खगोल विज्ञान का अध्ययन किसलिए?

□ जयंत विष्णु नार्लीकर

ई-मेल : jayant@iucaa.ernet.in

मैं पेशे से खगोल विज्ञानी और खगोलभौतिकीविद् हूं। मुझे लगा कि इस अवसर पर मैं आपके साथ इस क्षेत्र में काम करने की उत्तेजना और उत्साह को बांट सकूं और बता सकूं कि कैसे इस क्षेत्र में अप्रत्याशित चुनौतियां आ खड़ी होती हैं और कैसे उनका समाधान किया जाता है। जो लोग इस क्षेत्र में काम नहीं करते और जिन्हें सितारों के अवलोकन और ब्रह्मांड के रहस्यों को समझने के प्रयासों पर आश्चर्य होता है, उन्हें भी यह बताना चाहता हूं कि आम लोगों के लिए अबूझ समझा जाने वाला यह विषय न केवल वैज्ञानिकों बल्कि पूरे समाज के लिए कितना लाभदायक है।

वास्तव में खगोलविज्ञान का प्रारंभ न केवल ब्रह्मांड के रहस्यों के प्रति मानवीय उत्सुकता की वजह से हुआ, बल्कि इस समझ के कारण भी हुआ कि आकाश दर्शन समाज के लिए भी लाभदायक है। समय बीतने के साथ-साथ नक्षत्रों तथा तारामंडलों की आकाश में अलग-अलग स्थिति होती है और इन स्थितियों के क्रम को समझकर पंचांग बनाए जा सकते हैं। सूर्य और चंद्रमा की स्थिति में परिवर्तन से समय के परिवर्तन का पता चला और यह भी पता चला कि इन परिवर्तनों का एक नियमित चक्र है जो *एक वर्ष* में पूरा होता है।

किसान के लिए यह जानना महत्वपूर्ण था कि साल के दौरान मौसम कैसे बदलते हैं ताकि सही समय पर फसलों की बुआई, निराई और कटाई की जा सके। आज भी किसान *नक्षत्र* देखकर ये काम करते हैं।

भारतीय समाज में आकाश में ग्रहों-नक्षत्रों की स्थिति देखकर विभिन्न कर्मकांडों-अनुष्ठानों के लिए शुभ मुहूर्त तय किए जाते रहे हैं। प्राचीनकाल में गणित के क्षेत्र में काफी प्रगति इसलिए भी हुई क्योंकि इसका ज्ञान यज्ञों के आयोजनों से जुड़ा था। इन आयोजनों में खगोल विज्ञान का योगदान रहा।

यही नहीं, दूर देशों की समुद्री यात्रा करने वाले नाविक भी सितारों को देखकर महत्वपूर्ण दिशा-ज्ञान हासिल करते थे ताकि सही दिशा में अपनी नौकाओं-जहाजों को ले जा सकें। इस तरह वे 'आकाश को पढ़कर' अपनी समुद्री यात्राओं से संबंधित समस्याओं का व्यावहारिक समाधान कर लेते थे।

केप्लर से अब तक

आइए, अब आधुनिक काल की ओर बढ़कर ग्रहों की गतियों पर विचार करें। यूनानी लोग 'प्लेनेट' यानी 'ग्रह' शब्द को उसके शाब्दिक अर्थ 'वांडरर' (घुमक्कड़) में लेते थे क्योंकि उन्हें ग्रहों की गति बड़ी बेतरतीब लगती थी। यूनानी लोग अरस्तू के प्राकृतिकता के दर्शन को मानते थे, इसलिए आकाशीय पिंडों की गति को चक्रीय गति समझा। अरस्तू का मानना था कि सभी *प्राकृतिक गतियां* चक्रीय होती हैं और चक्रीय पथ से कोई भी विचलन किसी गड़बड़ी का संकेतक है। ऐसी अस्वाभाविक गति को उसने अनियंत्रित गति (वायलेंट मोशन) कहा।

सभी सितारों (नक्षत्रों) का पूर्व से पश्चिम का मार्ग पूर्णतः चक्रीय नजर आता था। ये गतियां अरस्तू द्वारा प्रतिपादित स्वाभाविक गतियों की मान्यता के अनुरूप थीं। लेकिन ग्रहों की गतियां इतनी सरल नहीं थीं। सितारों के विपरीत, ग्रह टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर चलते तथा सूर्य की तुलना में कभी पीछे, तो कभी ऊपर-नीचे जाते लगते थे। इसीलिए उन्हें *'वांडरर्स'* (घुमक्कड़) कहा गया।

संभवतः ग्रहों के ऐसे ही असाधारण मार्गों की वजह से लोगों के मन में यह बात घर कर गई कि ग्रहों में असाधारण शक्तियां होती हैं जिनके जरिए वे पृथ्वी के मानवों के जीवन पर असर डालते हैं। प्राचीनकाल से ही ज्योतिष पर लोगों के विश्वास को इस आधार पर समझा जा सकता है। मैं बाद में इस पहलू की फिर चर्चा करूंगा।

अरस्तू के अनुयायी इसी विश्वास पर टिके नहीं रहे और उन्होंने ग्रहों के टेढ़े-मेढ़े मार्ग को भी वृत्तीय गति की व्यवस्था में ढालने का प्रयास किया। इसीलिए *अधिचक्रों* (एपिसाइकिल्स) की धारणा विकसित हुई। इस धारणा के अनुसार, ग्रह एक साधारण वृत्तीय कक्षा में ही नहीं घूमते बल्कि वे ऐसे वृत्त में घूमते हैं जिसका केंद्र किसी अन्य वृत्त में घूमता है; इस नए वृत्त का केंद्र अगले वृत्त में घूमता है और यह सिलसिला जारी रहता है। ज्यामितीय चित्र बनाने वाला प्रेक्षणों को जितनी शुद्धता से मॉडल में ढाल पाने में कुशल और समर्थ हो, उतनी यह प्रक्रिया चलती रहेगी! इन वृत्तों के अधिवृत्त (एपिसाइकिल) और इस सिद्धांत को *अधिवृत्तीय* सिद्धांत कहा गया।

संक्षेप में, दो हजार वर्ष पहले के यूनानी खगोलविज्ञानियों के लिए ग्रहों की बेतरतीब गति को समझना एक बड़ी चुनौती थी और उन्होंने एपिसाइकिल जैसी जटिल ज्यामितीय रचनाओं से ग्रहों की गति को समझने का प्रयास किया। आज के सैद्धांतिक भौतिक विज्ञानी की शब्दावली में अगर कहा जाए तो उनके सिद्धांत में एपिसाकिल ऐसे मानदंड थे जिनकी संख्या ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने पर ही ग्रहों की गति के बारे में वांछित शुद्धता के परिणाम हासिल हो सकते थे।

वृत्तों के प्रति यूनानियों के मोह के पीछे वृत्तीय गतियों के बारे में अरस्तू की गलत धारणा थी। भूकेंद्रित सिद्धांत ने स्थिति को और भी जटिल बना दिया। इस सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी अंतरिक्ष में स्थिर है तथा सभी ग्रह तथा सूर्य इसके चारों ओर घूमते हैं। निकोलस कोपर्निकस ने इस धारणा के दूसरे भाग से मुक्ति दिलाई लेकिन पहले भाग को मान लिया। उसने यह सिद्धांत प्रस्तुत किया कि पृथ्वी तथा अन्य ग्रह स्थिर सूर्य का चक्कर लगाते हैं लेकिन अधिचक्रों (एपिसाइकिल्स) की बात मान ली। इस तरह, उसकी ज्यामितीय संरचनाएं अपेक्षाकृत सरल तो हो गईं लेकिन अब भी उनमें स्पष्टता नहीं थी। एपिसाइकिल अब भी बने हुए थे और यह सच्चाई को देखने का गलत तरीका था।

यहां हम जोहानेस केप्लर के योगदान की प्रशंसा करते हैं। वह ग्रहों के मार्गों का ऐसे अध्ययन करना चाहता था ताकि उनके मार्ग की संरचना में अंतर्निहित सरलता को प्रस्तुत किया जा सके। उसे लगा कि इसके लिए विस्तृत प्रेक्षणों का अध्ययन जरूरी है। डेनमार्क के खगोलविज्ञानी टाइको ब्राहे ने ऐसे प्रेक्षण किए थे, इसलिए वह टाइको का सहायक बन गया। टाइको का भी मानना था कि कोपर्निकस का सूर्यकेंद्रित सिद्धांत गलत था और उसे यकीन था कि एक दिन उसके आंकड़ों से यह सिद्धांत गलत सिद्ध हो जाएगा। उसे एक सहायक की जरूरत थी और केप्लर को सहायक बनाकर उसे खुशी हुई।

टाइको जैसे सनकी और अपमानजनक व्यवहार करने वाले व्यक्ति का सहायक बनना काफी मुश्किल काम था लेकिन कैप्लर उसके साथ लगा रहा क्योंकि उसके आंकड़े अनमोल

थे। कैप्लर की किस्मत थी कि उसके सहायक बनने के बाद टाइको अधिक समय तक जीवित नहीं रहा और मरते समय उसने अपने सहायक को कोपर्निकस की मान्यताओं को गलत साबित करने का दायित्व सौंपा।

टाइको की मृत्यु के बाद जहां उसके रिश्तेदार उसकी संपत्ति के बंटवारे को लेकर झगड़ रहे थे, कैप्लर ने चुपके से उसके बहुमूल्य आंकड़ों पर कब्जा किया और अगले दो दशकों तक उनका विश्लेषण करता रहा। अंततः उन्हीं आंकड़ों के आधार पर उसने ग्रहों की गति के तीन नियम पेश किए जिनके साथ उनका नाम जुड़ गया। एक तरह से उसने टाइको से किया गया वादा निभाया : उसने कोपर्निकस को गलत तो साबित किया लेकिन उस मायने में नहीं, जैसा टाइको चाहता था। कैप्लर ने साबित किया कि कोपर्निकस का सूर्यकेंद्रिक सिद्धांत तो सही है लेकिन ग्रहों के एपिसाइकिलों में घूमने वाली उसकी धारणा गलत है।

कैप्लर के ग्रहों की गति के पहले नियम से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसमें कहा गया है कि ग्रह दीर्घवृत्तीय मार्ग में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य दीर्घवृत्त के फोकस बिंदु पर स्थित होता है। इस तरह अधिवृत्तों (एपिसाइकिल) की शृंखला के स्थान पर कहीं ज्यादा शुद्ध दीर्घवृत्तों की धारणा सामने आई। कैप्लर के दूसरे नियम में बताया गया है कि ग्रह अपने मार्ग पर *कैसे* चलते हैं। ग्रह को सूर्य से जोड़ने वाली रेखा उसकी कक्षा को बराबर समय-अवधियों के समान क्षेत्रों में बांटती है। कैप्लर के तीसरे नियम में ग्रह द्वारा सूर्य की परिक्रमा के समय का उसके *आकार* के साथ संबंध बताया गया है।

मैंने ये बातें विस्तार से इसलिए बताई हैं क्योंकि इन सरल लगने वाले नियमों के पीछे कैप्लर के निरंतर प्रयासों का योगदान रहा है। तमाम शोर-शराबे के बीच उसने वह सच्चा संकेत समझ लिया जो उसके पूर्ववर्ती खगोलविज्ञानी नहीं समझ पाए थे। *उसने ग्रह गति के सही स्वरूप की खोज कर ली।* इससे बड़ी बात यह थी कि अब इस प्रश्न को पूछने का समय आ गया था, 'ग्रह सूर्य के चारों ओर ग्रह इस तरह क्यों' घूमते हैं?'

इस प्रश्न का उत्तर आइजेक न्यूटन ने अपनी प्रतिभा से दिया। हम यह कहानी जानते हैं कि कैसे सन् 1664-1666 के अपने जादुई वर्षों के दौरान वूलस्थ्रौप मेनॉर में जब न्यूटन अपने बगीचे में बैठा था तो एक सेब उसके सिर पर गिरा और उसने गुरुत्वाकर्षण का नियम खोज निकाला। लेकिन, क्या सेब गिरने से विपरीत वर्गानुपात के नियम को खोजने की प्रेरणा मिल सकती है? अगर यह कहानी सही है तो यही कहा जा सकता है कि इस घटना से न्यूटन को महज यही अंदाजा हुआ होगा कि पृथ्वी और सेब के बीच कोई आकर्षण बल है। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। आधुनिकतम और अत्यंत शुद्ध उपकरणों की गणना से भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता कि सेब के गिरने से आकर्षण के विपरीत वर्गानुपात का नियम निकाला जा सकता है। इस परिमाणात्मक गणना के लिए न्यूटन को ज्यादा विस्तृत आंकड़ों की जरूरत थी जो कैप्लर उसके लिए पहले ही जुटा चुका था।

आज गणित का स्नातक स्तर का छात्र भी कैप्लर के तीन नियमों के आधार पर गणना करके गुरुत्वाकर्षण का विपरीत वर्गानुपात का नियम सिद्ध कर सकता है। न्यूटन के समय में यह एक बड़ी प्रतिभा का काम था। उसने इस उद्देश्य के लिए ही विकसित अपने चलन-कलन (कैलकुलस) के जरिए यह नियम सिद्ध किया। बाद में उसने इसका विपरीत सिद्धांत भी प्रस्तुत किया कि गुरुत्वाकर्षण तथा गति के नियम के आधार पर कैप्लर के नियम सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार, सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक ग्रह कैसे और क्यों घूमते हैं - इस पहेली को पूरी तरह सुलझा लिया गया था। यह पता चल गया था कि ग्रह बेतरतीब घुमक्कड़ पिंड नहीं हैं बल्कि वे सूर्य के आकर्षण बल से खिंचकर निश्चित मार्ग पर घूमते निष्क्रिय पिंड हैं। इस तथ्य की जानकारी के बाद ग्रहों का मनुष्यों के जीवन पर कोई असर पड़ने का कतई औचित्य नहीं रह गया था। फिर भी, मानव मन कुछ इतना विचित्र है कि इस जानकारी के तीन सौ साल बाद आज भी लोग इस पर विश्वास करते हैं!

अब मैं ज्ञान के विकास-क्रम के अगले चरण की चर्चा करता हूं। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम कैप्लर के ग्रहीय गति के नियम से प्रेरित था तथा आने वाले समय में विभिन्न प्रेक्षणों से प्राप्त खगोलीय आंकड़ों से यह नियम और भी पुष्ट हो गया। इनमें हेली धूमकेतु, नेप्च्यून ग्रह की खोज और युग्मक तारों की गतियों के प्रेक्षणों से प्राप्त आंकड़े शामिल थे। हालांकि हेनरी केवेंडिश ने अपने प्रसिद्ध प्रयोग के जरिए प्रयोगशाला में गुरुत्वाकर्षण बल को मापा लेकिन न्यूटन के नियम के प्रति विश्वास पूरी तरह से खगोलीय आंकड़ों के कारण ही बढ़ा।

इस पृष्ठभूमि के बाद अब हम अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के हाल के वर्षों की चर्चा करेंगे। अब हम पृथ्वी के चारों ओर कृत्रिम उपग्रह (सेटेलाइट) छोड़ सकते हैं। पृथ्वी से चंद्रमा तथा बुध, मंगल या बृहस्पति जैसे ग्रहों तक अंतरिक्षयान भेज सकते हैं। हम इन यानों को एकदम शुद्ध पूर्व-निर्धारित मार्गों पर भेज सकते हैं और यह न्यूटन के नियम की सच्चाई के कारण ही संभव हुआ है। अतः आज हम अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के जो भी लाभ हासिल कर रहे हैं, चाहे दूर-संवेदन तकनीक के जरिए पृथ्वी के संसाधनों का पता लगाना हो या ई-मेल अथवा फैक्स भेजना हो, या फिर टेलीविजन पर विश्व कप मैच का सीधा प्रसारण देखना हो - यह सब गुरुत्वाकर्षण के नियम की समझ से ही संभव हो सका है; और गुरुत्वाकर्षण के नियम का आधार खगोलविज्ञान है।

मैं इस लेख में बताना चाहता हूं कि खगोलविज्ञान रोजमर्रा के जीवन की दृष्टि से चाहे जितना दूर और अबूझ लगे, लेकिन इसके अध्ययन से मानवीय ज्ञान में जो वृद्धि होती है, वह समूची मानव जाति के लिए लाभदायक है।

सौर ऊर्जा का स्रोत

अब मैं एक और उदाहरण देता हूं। प्राचीन काल से ही मानव सोचता आया है कि सूर्य आखिर लगातार कैसे चमकता रहता है? खगोल भौतिकीविदों के लिए यह प्रश्न एक बड़ी चुनौती बना रहा है, जिनका कार्य भौतिक विज्ञान के ज्ञात नियमों के आधार पर आकाशीय पिंडों के व्यवहार को समझना है। अब हम इस पहेली को सुलझा चुके हैं, लेकिन इसके इतिहास को जानना दिलचस्प होगा।

पिछली शताब्दी में दो प्रख्यात भौतिकशास्त्रियों - ब्रिटेन के लॉर्ड केल्विन और जर्मनी के बैरन वॉन हेल्महोल्ट्ज ने इस समस्या का एक समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि सूर्य की ऊर्जा का स्रोत इसका विशाल गुरुत्वीय ऊर्जा भंडार है। इसका गुरुत्व एक बांध की तरह है जिसमें ऊंचाई से गिरते पानी से बिजली की टर्बाइन चलती है और गुरुत्वीय ऊर्जा विद्युत् ऊर्जा में बदल जाती है। केल्विन तथा होल्महोल्ट्ज ने यह भी दर्शाया कि सूर्य पदार्थ का एक विशाल पिंड है और जब यह धीरे-धीरे सिकुड़ता है तो यह गुरुत्वीय ऊर्जा मुक्त करता है जिसे प्रकाश ऊर्जा में बदला जा सकता है।

सरसरी तौर पर यह गणना बड़ी प्रभावशाली लगी। इसके अनुसार अगर सूर्य आज की ही तरह

चमकता रहे तो वह दो करोड़ वर्ष तक ऊर्जा लेता रहेगा। लेकिन, यह विचार सही नहीं निकला क्योंकि शताब्दी का अंत होते-होते यह जानकारी स्पष्ट होती गई कि पृथ्वी और सौरमंडल की उम्र दो करोड़ वर्ष से कहीं बहुत अधिक है। आज हम जानते हैं कि सौरमंडल की उम्र करीब पांच अरब वर्ष है। अतः सूर्य का गुरुत्वीय ऊर्जा भंडार इतने समय तक इसके चमकते रहने के लिए पर्याप्त नहीं है।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में कैंब्रिज के खगोल विज्ञानी आर्थर स्टेनले एडिंगटन ने सूर्य की ऊर्जा के प्रश्न पर नए सिरे से विचार शुरू किया। एडिंगटन ने सूर्य जैसे तारों की आंतरिक संरचना के बारे में समीकरण विकसित किए। इन समीकरणों में सूर्य को गर्म प्लाज्मा का ऐसा पिंड माना गया (यानी गैसीय परमाणुओं का ऐसा समूह, जिनके परमाणुओं के बाह्य इलेक्ट्रॉन निकल कर अलग हो गए हैं) जो अपने ही गुरुत्व तथा गैस और विकिरण के दबावों के परस्पर विपरीत बलों के कारण संतुलन में बना हुआ हो। इन समीकरणों के जरिए यह बताया गया कि सूर्य जैसे तारे के आंतरिक हिस्से से बाहरी परतों की ओर किस प्रकार विकिरण फैलता है जो अंततः बाहर निकल कर उस तारे की रोशनी में परिवर्तित हो जाता है।

इन समीकरणों के आधार पर एडिंगटन ने सूर्य जैसे तारे की बाहरी परतों से अंदर की ओर दबाव, घनत्व और ताप के बढ़ते प्रवाह को समझाया। ये सभी बाहरी परत से अंदर की ओर निरंतर तेजी से बढ़ते रहते हैं। उदाहरण के लिए, सूर्य जैसे तारे की बाहरी परत का तापमान 5500 डिग्री सेल्सियस हो सकता है, जबकि उसके मध्यवर्ती आंतरिक हिस्से का तापमान एक करोड़ डिग्री सेल्सियस से भी अधिक हो सकता है।

सामान्यतः किसी परमाणु का नाभिक एक कसी हुई स्थाई संरचना है। सामान्य रासायनिक अभिक्रिया का नाभिक पर कोई असर नहीं पड़ता। लेकिन सामान्य रासायनिक अभिक्रियाओं के ऊर्जा-स्तर से बहुत अधिक ऊर्जा-स्तर पर, जैसे कि किसी गैस के कणों के एक करोड़ डिग्री सेल्सियस ताप पर, परमाणुओं के नाभिक का भी अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। यह भी संभव हो सकता है कि दो छोटे परमाणु-नाभिक आपस में जुड़ कर एक बड़ा नाभिक बन जाएं। इस प्रक्रिया को *नाभिकीय संलयन* कहते हैं।

एडिंगटन का मानना था कि नाभिकीय संलयन तारे के केंद्रीय भाग यानी कोर में होता होगा और इस प्रक्रिया में, विशेरू रूप से, हाइड्रोजन के नाभिकों के संल्यन से हीलियम का नाभिक बनेगा। इससे पहले जे. पेरिन ने भी ऐसी संभावना व्यक्त की थी। जब हाइड्रोजन के चार नाभिकों के जुड़ने से हीलियम का एक नाभिक बनेगा तो *कुछ द्रव्यमान कम होगा*। आइंस्टाइन के प्रसिद्ध समीकरण $E=mc^2$ के जरिए पदार्थ और ऊर्जा के संरक्षण के नियम को लागू करते हुए, एडिंगटन ने बताया कि पदार्थ का यह नुकसान ऊर्जा में बदलेगा और इसी ऊर्जा की वजह से तारा प्रकाश देता है।

लेकिन, इस मान्यता में एक कमी थी। सन् 1920 के दशक में नाभिकीय भौतिकी एकदम प्रारंभिक स्थिति में थी। परमाणु वैज्ञानिकों को लगा कि एडिंगटन की मान्यता इसलिए व्यावहारिक नहीं है क्योंकि हाइड्रोजन के नाभिक धनावेशित होंगे, अतः एक-दूसरे को प्रतिकर्षित करेंगे। जब तक ये नाभिक बहुत तेज रफ्तार से एक-दूसरे से न टकराएं, ये जुड़ नहीं पाएंगे। गर्म गैस में नाभिक तीव्र गति से घूमते हैं। लेकिन, परमाणु वैज्ञानिकों के अनुसार एडिंगटन जिस एक करोड़ डिग्री सेल्सियस अथवा इससे अधिक तापमान की बात कर रहे थे, उसमें नाभिकों की रफ्तार इतनी तेज नहीं होगी कि संलयन की प्रक्रिया संपन्न हो सके।

एडिंगटन को विश्वास था कि वे सही हैं। अपनी पुस्तक - *दि इंटरनल कंस्टीट्यूशन ऑफ दि स्टार्स* में उन्होंने लिखा :

'...हम आलोचक की इस बात पर बहस नहीं करते कि तारे इतने गर्म नहीं हैं कि यह प्रक्रिया संपन्न हो सके। हम उससे कहेंगे कि वह ज्यादा गर्म स्थान की तलाश करे...'

एक दशक बाद एडिंगटन की बात सच साबित हुई। सन् 1930 के दशक के मध्य तक नाभिकीय भौतिकी में इतनी प्रगति हो गई थी कि वैज्ञानिकों को नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया की बेहतर जानकारी हो गई। सन् 1939 में हेंस बेथ ने हाइड्रोजन और हीलियम के नाभिकीय संलयन के विचार के आधार पर सूर्य तथा अन्य तारों में ऊर्जा के सृजन का यथार्थपरक मॉडल प्रस्तुत किया।

यहां एक अन्य उदाहरण भी है कि कैसे खगोल विज्ञान ने मूलभूत विज्ञान को रास्ता दिखाया। सूर्य में संलयन की जो प्रक्रिया होती है, हाइड्रोजन बम में भी ठीक वैसी ही ताप-नाभिकीय प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया का हमारे वैज्ञानिकों ने 11 मई 1998 को पोखरण में परीक्षण किया। अंतर सिर्फ यह है कि सूर्य में यह प्रक्रिया नियंत्रित रूप में होती है जबकि बम में यह विस्फोटक तरीके से होती है।

इसके साथ ही, अब मैं इसी संदर्भ से संबंधित अंतिम प्रश्न पर आता हूं। क्या हम पृथ्वी पर नियंत्रित रूप से इस प्रक्रिया को अंजाम दे सकते हैं? सूर्य में पिछले पांच अरब वर्षों से नियंत्रित रूप से यह प्रक्रिया चल रही है। अब चुनौती यह है कि खगोलीय परिस्थितियों में हो रही इस प्रक्रिया को पृथ्वी में कैसे दोहराया जाए।

सूर्य के भारी गुरुत्व के कारण वहां इस प्रक्रिया का संपन्न हो पाना सहज है। पृथ्वी पर यह परीक्षण गुरुत्व के आधार पर नहीं किया जा सकता क्योंकि यहां यह बहुत कम है। पृथ्वी पर इस प्रक्रिया को करने के लिए इस समय गर्म प्लाज्मा को एक चुंबकीय बल के दायरे में नियंत्रित रखने के प्रयास किए जा रहे हैं। अगर यह प्रक्रिया सफल हो जाती है तो इससे ऊर्जा प्राप्त करने के सस्ते तरीके उपलब्ध हो सकेंगे क्योंकि ईंधन के लिए हैवी वाटर समुद्रों से प्राप्त हो जाएगा।

मूल भौतिकी से संबंध

अब तक दिए गए उदाहरणों से यह महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट होता है कि खगोल विज्ञान का मूल भौतिकी में बड़ा योगदान है। गुरुत्वाकर्षण का नियम और नियंत्रित ताप-नाभिकीय संलयन की धारणाएं खगोल विज्ञान से ही मूल भौतिकी में आईं। वास्तव में ब्रह्मांड, विज्ञान के लिए इस पृथ्वी की किसी भी प्रयोगशाला की तुलना में अत्यंत विशाल प्रयोगशाला है। विज्ञान के जो नियम पृथ्वी पर खोजे और परखे जाते हैं, उनका ब्रह्मांड की प्रयोगशाला में कहीं अधिक कड़ा परीक्षण होता है। निम्न उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होगी :

- ब्रह्मांडीय रेडियो स्रोत 10^{16} अर्ग ऊर्जा मुक्त करते हैं। यह एक मेगाटन के हाइड्रोजन बम द्वारा छोड़ी गई ऊर्जा का सौ अरब अरब अरब अरब गुना अधिक है।
- तेजी से स्पंदित होते पल्सर कहे जाने वाले रेडियो स्रोत कुछ मिली सेकेंड जैसे अत्यल्प अंतराल में इतनी नियमितता से रेडियो संकेत भेजते हैं कि वे स्थायित्व और शुद्धता में मानव-निर्मित किसी भी परमाणुविक घड़ी से भी बेहतर हैं।
- पृथ्वी पर पहुंचने वाली सबसे ज्यादा ऊर्जा की ब्रह्मांडीय किरणों में ऐसे कण होते हैं

जिनमें निहित ऊर्जा पृथ्वी पर बने आधुनिकतम एक्सीलरेटर की तुलना में एक अरब गुना होती है।

- न्यूट्रॉन तारों में पदार्थ का घनत्व पानी के घनत्व से दस लाख अरब गुना ज्यादा होता है। पृथ्वी पर सामान्य आकार में मौजूद किसी भी पदार्थ से यह कई गुना अधिक है।
- इस समय उपलब्ध सबसे बेहतर टेलीस्कोपों से ब्रह्मांड के जिस आकार का पता चलता है, वह इतना विशाल है कि प्रकाश की किरण को उसे पार करने में दस अरब साल लगेंगे। इस विशालता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि चंद्रमा से प्रकाश को पृथ्वी तक पहुंचने में मात्र सवा सेकेंड लगता है।

ऐसे ही अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। इनसे क्या पता चलता है? यही कि भौतिक विज्ञानी को खगोलविज्ञान की जरूरत इस बात की पुष्टि के लिए है कि पृथ्वी पर वर्तमान काल में भौतिकी के जिन नियमों को खोजा गया है, वे समूचे ब्रह्मांड में तथा सभी कालों में भी इसी तरह लागू होते हैं।

इस विचार को आधार बना कर ब्रह्मांड के प्रारंभिक अस्तित्व के अध्ययन में काफी खींच-तान कर एक निष्कर्ष निकाला गया है। एक आम मान्यता है (जिसे मैं नहीं मानता) कि ब्रह्मांड एक गर्म पिंड के महाविस्फोट (हॉट बिग बैंग) से जन्मा। यह महाविस्फोट दस अरब साल पहले हुआ होगा। अगर हम महाविस्फोट की कथित घटना पर आज विचार करें तो यह भौतिक विज्ञान के दायरे से बाहर नजर आता है क्योंकि यह ऐसी स्थिति में हुआ जब विभिन्न भौतिक परिमाण, जैसे घनत्व, तापमान आदि अनंत थे। अनंत की स्थिति में सारी गणितीय प्रक्रियाएं अर्थहीन हो जाती हैं। लेकिन, इस *प्रथम युग* की शुरुआत के साथ ही भौतिक विज्ञानी की घड़ी ने भी टिक-टिक करना शुरू कर दिया होगा। उदाहरण के लिए, समय बीतने के साथ ब्रह्मांड ठंडा होने लगता है और तापमान गिरने लगता है।

हम जानते हैं कि गैस का तापमान उसकी गतिज गतिविधियों का संकेतक है। जितना ज्यादा ताप होगा, गैस के प्रत्येक कण में ऊर्जा की मात्रा उतनी ही ज्यादा होगी। अतः महाविस्फोट के बाद के प्रारंभिक दिनों में इन कणों की ऊर्जा बहुत अधिक रही होगी। इस परिस्थिति के आकलन से उत्साहित होकर उच्च ऊर्जा वाले कणों के क्षेत्र में कार्यरत भौतिक विज्ञानियों ने प्रारंभिक ब्रह्मांड की परिस्थितियों को अपने एकीकरण सिद्धांत (थ्योरी ऑफ यूनीफिकेशन) के परीक्षण के लिए बेहद उपयुक्त पाया।

सभी बुनियादी पारस्परिक क्रियाओं की एकरूपता की बात सबसे पहले अल्बर्ट आइंस्टाइन ने रखी। उन्होंने गुरुत्वीय और विद्युत-चुंबकीय प्रक्रियाओं को *एकीकृत क्षेत्र सिद्धांत यानी यूनीफाइड फील्ड थ्योरी* के अंतर्गत लाने का प्रयास किया। उनका लक्ष्य यह सिद्ध करना था कि गुरुत्व, विद्युत तथा चुंबकत्व की अलग-अलग लगने वाली परिघटनाएं एक ही मूलभूत प्राकृतिक नियम को व्यक्त करती हैं। उनके प्रयासों का कोई ठोस नतीजा नहीं निकला और सैद्धांतिक भौतिक विज्ञानियों ने इस सिद्धांत का खास समर्थन नहीं किया। इस संदर्भ में वूल्फगैंग पॉली का कहना था, *ईश्वर ने जिन्हें अलग-अलग रखा है, किसी मनुष्य को उन्हें एक साथ नहीं रखना चाहिए।*

लेकिन ड्रेस डिजाइनरों की दुनिया की तरह विज्ञान की दुनिया में भी फैशन बदलते हैं! कुछ दशक बाद वैज्ञानिकों ने एक ऐसे एकीकृत ढांचे को तलाशना शुरू कर दिया जिसमें आइंटाइन द्वारा बताई दो पारस्परिक क्रियाएं ही नहीं, बल्कि (*कमजोर* तथा *मजबूत* कही जाने वाली पारस्परिक क्रियाएं) ऐसी सभी बुनियादी प्रक्रियाएं शामिल हों, जो परमाणु के नाभिकों तथा इनके अवपरमाणुओं में होती हैं। इस दिशा में आंशिक सफलता तब मिली जब अब्दुस सलाम और स्टीफेन वीनबर्ग विद्युत चुंबकत्व और कमजोर पारस्परिक क्रियाओं (वीक इंटरएक्संस) को एकरूप करने वाला सिद्धांत प्रस्तुत किया गया। इस सिद्धांत को इसलिए भी सही माना गया क्योंकि जेनेवा के पास सर्न (CERN) के शक्तिशाली पार्टिकल एक्सीलरेटर में इसके पूर्वानुमानों की पुष्टि भी की गई।

लेकिन, एकीकृत क्षेत्र के इस सिद्धांत के अगले चरण की पुष्टि ज्यादा पेचीदा है। तथाकथित विशाल एकीकृत सिद्धांत (ग्रेंड यूनीफाइड थ्योरी, संक्षेप में GUT) के इस समय स्वीकृत मानक मॉडल के लिए वर्तमान एक्सीलरेटरों में उपलब्ध ऊर्जा से *हजार अरब गुना ज्यादा* ऊर्जा चाहिए। सन् 1980 तक ऊर्जा-संपन्न कण सिद्धांत (पार्टिकल थ्योरी) को मानने वाले भौतिक विज्ञानी ऐसी स्थिति में पहुंच गए कि इस सिद्धांत की प्रायोगिक रूप में पुष्टि नहीं की जा सकती थी। और, विज्ञान में जिस सिद्धांत की प्रायोगिक पुष्टि नहीं की सकती, मात्र अनुमान कहा जा सकता है।

इस पृष्ठभूमि में महाविस्फोट ब्रह्मांड विज्ञान (बिग बैंग कॉस्मालॉजी) ने परमाणु वैज्ञानिकों को एक रास्ता दिखाया। जैसा पहले कहा जा चुका है, ब्रह्मांड की उत्पत्ति के प्रारंभिक युगों में इसके घटक कण बहुत अधिक ऊर्जा-संपन्न थे। अतः इनका इस्तेमाल विशाल एकीकृत सिद्धांत (GUT) के परीक्षण के लिए किया जा सकता था। ऐसे परीक्षण के लिए वांछित ऊर्जा-स्तर ब्रह्मांड के एकदम प्रारंभिक युगों के समान हो सकता है। लेकिन, *कितना प्राचीन होगा यह युग?* गणनाओं के अनुसार ब्रह्मांड की उत्पत्ति के एक सेकेंड के अरब-अरब-अरब-अरबवें हिस्से में ही वांछित ऊर्जा वाले कण होंगे! दूसरे शब्दों में, कण सिद्धांतवादियों को ब्रह्मांड में ही ऐसा उच्च ऊर्जा वाला पार्टिकल एक्सीलरेटर मिल गया जिसने एक क्षण के लिए ही सही, उनके विशाल एकीकृत सिद्धांत के परीक्षण के लिए आवश्यक उच्च ऊर्जा-संपन्न कण तैयार किए होंगे।

कण सिद्धांत को मानने वाले भौतिक विज्ञानियों के ब्रह्मांड-विज्ञान के क्षेत्र में दखल का महाविस्फोट (बिग बैंग) सिद्धांत के समर्थकों ने भी स्वागत किया क्योंकि इससे ब्रह्मांड के प्रारंभिक काल में पदार्थ और विकिरण की प्रकृति के बारे में 'भौतिक विज्ञान' की दृष्टि से चर्चा की संभावना बनी। ब्रह्मांड विज्ञानी एक ऐसे सिद्धांत पर काम कर रहे हैं जिसमें ब्रह्मांड के प्रारंभिक चरणों में पड़े 'बीजों' से बाद के चरणों में विशाल संरचनाओं के विकास की व्याख्या की जा सकती है। कण के सिद्धांतों से इन बीजों की जानकारी मिलने की आशा है।

शेल्डन ग्लाशो ने ब्रह्मांड विज्ञान तथा कण भौतिकी (पार्टिकल फिजिक्स) के पारस्परिक संबंध की तुलना मिथकीय सांप (इससे हमें अपने पौराणिक शेषनाग की भी याद आती है) से की जो अपने ही पूंछ को निगल रहा है। इस सांप के सिर की तुलना संपूर्ण ब्रह्मांड से की जबकि सबसे छोटे कणों को इसकी पूंछ माना। निगलने की क्रिया को विशालतम और लघुतम का संश्लेषण माना।

विशालतम और लघुतम को एक ही संयुक्त प्रयास में समझ लेने के उत्साह में थोड़ी समझदारी बरतना जरूरी है। हमारे पास दो अलग-अलग अनुमान हैं। एक अनुमान कण भौतिकी का अर्थात् विशाल एकीकृत क्षेत्र (GUT) की धारणा है। दूसरा अनुमान ब्रह्मांड-विज्ञान से बिग बैंग सिद्धांत का है। दो अनुमानों को मिलाकर एक निश्चित सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता। ज्यादा से ज्यादा, इन्हें एक विशिष्ट परिस्थिति में जोड़ा जा सकता है। यह परिस्थिति दोहराई भी नहीं जा सकती। जैसा पहले कहा जा चुका है, विशाल एकीकृत क्षेत्र वाली अवस्था ब्रह्मांड के प्रारंभिक दौर में क्षण मात्र में गुजर गई और ऐसी ही परिस्थितियां दुबारा नहीं बनीं। किसी

सिद्धांत के परीक्षण का मानक वैज्ञानिक मानदंड है कि बार-बार उसकी प्रायोगिक पुष्टि हो। यह सिद्धांत इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

फिर भी, यह उदाहरण बताता है कि खगोल विज्ञान का ज्ञान भौतिक विज्ञानियों के लिए अनिवार्य बनता जा रहा है।

टकराव से बचाव

अब मैं एक सामान्य मुद्दे की चर्चा करूंगा, जिससे पता चलता है कि पृथ्वी पर हमारे अस्तित्व के लिए खगोलविज्ञान का अध्ययन कितना जरूरी है।

हम जुरासिक युग के इतिहास से परिचित हैं जब विशाल डाइनोसॉरों का पृथ्वी पर दबदबा था। उनका क्या हुआ? किस महाविपत्ति के कारण पृथ्वी पर उनका पूरी तरह विनाश हो गया?

इस बारे में कई अनुमान लगाए गए हैं। लेकिन, एक संभावना को काफी गंभीरता से लिया गया है कि कोई विशाल अंतरिक्षीय पिंड पृथ्वी से टकराया होगा और इस टकराव से पृथ्वी पर ऐसी जबरदस्त हलचल मची होगी जिससे इस ग्रह के सभी जीवधारी या ज्यादातर जीवधारी नष्ट हो गए। वह टकराने वाला पिंड क्या रहा होगा?

आज के महानगरों की भीड़-भाड़ से तुलना करें तो पृथ्वी जिस अंतरिक्ष में चक्कर लगाती है, वह खाली-खाली लगता है। किसी पिंड से इसके टकराने की आशंका बहुत कम है। लेकिन, ऐसी आशंका बिल्कुल शून्य भी नहीं कही जा सकती। आइए, कुछ उदाहरणों का जायजा लें।

चंद्रमा की सतह ऊबड़-खाबड़ और गड्ढों (क्रेटर) से भरी है जो इस बात का प्रमाण है कि इस पर अनेक बार बाहरी पिंड टकराए। पृथ्वी पर भी ऐसे विशाल गड्ढे हैं जिनमें से कई गड्ढे पानी भर जाने से झील बन गए हैं। टक्करों से बने कुछ क्रेटरों को गलती से ज्वालामुखी विस्फोट से बना मान लिया जाता है। अमेरिका के एरिजोना प्रांत में कीटिओर क्रेटर और भारत में महाराष्ट्र के बुलढाना ज़िले में लोणार क्रेटर झील ऐसे गड्ढे या क्रेटर हैं जिनके किसी बाह्य पिंड की टक्कर से बने होने का अनुमान है। जैसा कि अमेरिकी क्रेटर के नाम से स्पष्ट है, ये दोनों क्रेटर संभवतः विशाल उल्का-पिंडों (मीटिओराइट) के टकराने से बने होंगे।

उल्का-पिंड सौरमंडल में सूर्य का चक्कर लगाते ऐसे अपेक्षाकृत छोटे-छोटे पिंड हैं जो ग्रहों जैसे विशाल पिंडों में नहीं बदल सके। इनमें से कुछ पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से खिंच कर पृथ्वी के करीब आ जाते हैं और पृथ्वी पर 'गिर' पड़ते हैं। कुछ सेंटीमीटर या इससे भी छोटे टुकड़े पृथ्वी के वायुमंडल के साथ घर्षण की गर्मी से जलकर नष्ट हो जाते हैं। इन्हें गलती से *'टूटते सितारे' (फॉलिंग स्टार्र या शूटिंग स्टार्र)* कह दिया जाता है। इनमें से कुछ साबुत धरती पर गिरते हैं और उन्हें पहचान कर संग्रहालयों में रखा जाता है। वे भू-भौतिकीविदों के लिए महत्वपूर्ण शोध-सामग्री बन जाते हैं। उल्का-पिंड सौरमंडल की आयु का अनुमान लगाने और इसकी रासायनिक विविधता की जानकारी हासिल करने में बड़े उपयोगी होते हैं।

लेकिन, विशाल उल्का-पिंड पृथ्वी से टकराकर भारी नुकसान पहुंचा सकते हैं। उदाहरण के लिए लोणार (महाराष्ट्र) में 'गड्ढा' बना देने वाले उल्का पिंड का व्यास लगभग 60 मीटर और वजन करीब दो करोड़ टन रहा होगा। इस टकराव से बने गड्ढे का आज व्यास 1830 मीटर और गहराई 150 मीटर है। इस टकराव से 6 मेगाटन हाइड्रोजन बम-विस्फोट के बराबर ऊर्जा मुक्त हुई। अगर हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो दूसरे विश्व युद्ध में हिरोशिमा में 13 किलोटन क्षमता का परमाणु बम गिराया गया, यानी उसकी क्षमता लोणार में गिरे उल्का पिंड के प्रभाव की तुलना में मात्र दो प्रतिशत थी।

सौरमंडल में इन उल्का-पिंडों से बड़े पिंड भी हैं। जुलाई 1994 में शूमेकर लेवी धूमकेतु बृहस्पति ग्रह से जा टकराया। पृथ्वी पर टेलीस्कोप के जरिए यह घटना देखी गई। बृहस्पति जैसे विशाल ग्रह के साथ धूमकेतु की यह टक्कर अपेक्षाकृत मामूली तथा क्षणिक रही। लेकिन, अगर कोई धूमकेतु पृथ्वी से टकराएगा तो क्या होगा? सन् 1992 में स्विफ्ट-टटल धूमकेतु के पृथ्वी के पास से गुजरते समय ऐसी ही आशंका व्यक्त की गई। उस समय यह पूर्वानुमान लगाया गया कि अगली बार 14 अगस्त 2126 को यह धूमकेतु पृथ्वी के बहुत करीब से गुजरेगा। हालांकि निश्चित गणना नहीं की जा सकती, लेकिन पृथ्वी से इस धूमकेतु के टकराने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। जब यह धूमकेतु 22वीं शताब्दी में फिर से दिखेगा, तभी इसका बेहतर अनुमान लगाया जा सकेगा।

सन् 1970 के दशक में मैंने एक विज्ञान-कथा लिखी थी जिसमें ऐसे ही एक धूमकेतु के पृथ्वी से टकराने की संभावना दर्शाई गई थी। वैज्ञानिकों ने इस विपत्ति को कैसे टाला? उस कहानी में, इस विपत्ति से निपटने के लिए एक मानव-रहित अंतरिक्षयान धूमकेतु के करीब भेजा गया। ऐसी व्यवस्था की गई कि धूमकेतु के पास पहुंचते ही इस यान में एक परमाणु विस्फोट हो जाए जिससे पैदा हुई तरंगों के झटके से धूमकेतु अपने मूल रास्ते से विचलित हो जाए और पृथ्वी से न टकराए। पृथ्वी को किसी धूमकेतु अथवा उल्का पिंड, बल्कि इस समय इससे भी बड़ा खतरा माने जाने वाले क्षुद्र ग्रह (ऐस्टेरॉइड) के टकराने से बचाने के लिए अब भी ऐसे ही समाधान की बात सोची जा रही है।

क्षुद्र ग्रह (ऐस्टेरॉइड) ऐसे अनेक पिंडों का समूह है जो मंगल और बृहस्पति ग्रहों के बीच पट्टी में सूर्य का चक्कर लगाते हैं। समझा जाता है कि ये ऐसे पिंड हैं जो ग्रह न बन सके! दूसरे शब्दों में ये 'विफल ग्रह' (फेल्ड प्लेनेट) हैं। ये पृथ्वी जैसे ग्रहों से छोटे पिंड हैं, इनका आकार कुछ सौ मीटर से दस किलोमीटर तक है, लेकिन इनमें से कुछ क्षुद्रग्रह एक हजार किलोमीटर आकार के भी हैं। आमतौर पर ये मंगल के उस पार ही स्थित हैं पर कभी-कभी ये पृथ्वी के करीब भी आ सकते हैं। इसी से इनके टकराने की आशंका पैदा हो जाती है। अनुमान है कि एक किलोमीटर तक आकार के करीब 1000 से 2000 और 100 मीटर तक आकार के 1,00,000 के करीब क्षुद्र ग्रह होंगे। हालांकि छोटे पिंडों के टकराने से कम नुकसान होगा, लेकिन ऐसे छोटे पिंडों के पृथ्वी से टकराने की आशंका कहीं ज्यादा है।

यह टकराव कितना भीषण हो सकता है? महाराष्ट्र में लोणार क्रेटर के उदाहरण से हम इसका अंदाज लगा सकते हैं। मान लीजिए, 10 किलोमीटर आकार का कोई पिंड पृथ्वी से टकराता है। तब कितनी ऊर्जा निकलेगी? उत्तर चकरा देने वाला है। उस टक्कर से *हिरोशिमा पर गिराए गए परमाणु बम जैसे एक अरब परमाणु बमों के बराबर* ऊर्जा मुक्त होगी। इस पिंड के धरती पर टकराने वाला इलाका तो तबाह होगा ही, पृथ्वी के वायुमंडल में भी ऐसे परिवर्तन हो सकते हैं कि पूरी पृथ्वी पर जीवनदायी परिस्थितियां समाप्त हो जाएं।

इन आशंकाओं को देखते हुए, अमेरिका के खगोल वैज्ञानिकों ने *स्पेसवाच प्रोग्राम* शुरू किया है जिसके अंतर्गत 1.8 मीटर के एक टेलीस्कोप से पृथ्वी के आस-पास के सभी बड़े आकार के क्षुद्रग्रहों पर नज़र रखी जा रही है। इन पिंडों के मार्ग का पता चलने से हम पूर्वानुमान लगा सकते हैं कि निकट भविष्य में इनमें से कोई खतरनाक तरीके से पृथ्वी के करीब तो नहीं आ रहा है। ऐसी जानकारी होने पर पहले से ही बचाव के उपाय किए जा सकते हैं।

इस उदाहरण से हमें एक बार फिर पता लगता है कि आकाश का अध्ययन केवल समय

बिताने के लिए नहीं किया जाता है। यह मानव जाति के अस्तित्व को बचा सकता है।

क्या ब्रह्मांड में हम अकेले हैं?

खगोल विज्ञान से जुड़ी चुनौतियों और इसके अध्ययन के फायदों का मेरा अगला उदाहरण भविष्य से जुड़ा है और संभवतः मानव इतिहास की सबसे रोचक खोज से जुड़ा है। हो सकता है, इस सदी में हमें इस अक्सर पूछे जाने वाले सवाल का पक्का जवाब मिल जाए कि क्या इस ब्रह्मांड में हम अकेले हैं!

अगर उत्तर मिल जाता है, तो यह खगोल विज्ञान का योगदान होगा। हालांकि यह विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से जुड़ा मुद्दा है लेकिन मुख्य रूप से खगोल विज्ञान के क्षेत्र में नवीनतम जानकारियां जुड़ने से ही विज्ञान की अन्य शाखाओं के विशेषज्ञ इस मुद्दे की ओर आकर्षित हुए। इस मुद्दे से जुड़ी कुछ प्रमुख बातें संक्षेप में इस प्रकार हैं :

- ब्रह्मांड की संरचना को उसकी व्यापकता में देखने से लगता है कि एक तारे के गिर्द घूमते ग्रह के रूप में पृथ्वी की स्थिति एकदम सामान्य है और बड़ी संख्या में ऐसे ही ग्रह हो सकते हैं जहां जीवन का अस्तित्व हो।
- मिलीमीटर-वेव खगोलविज्ञान से ऐसे विशाल आणविक बादलों का पता चला है जिनमें अत्यंत जटिल रासायनिक अणु हैं। इनमें ऐसे अणु भी हैं जिनसे मानव शरीर बना है।
- मंगल से आए छोटे आकार के एलन हिल उल्का पिंड से जीवाश्म जीवन के संकेत मिले हैं। हालांकि अभी यह अनुमान मात्र है लेकिन इससे यह संभावना बनी है कि हमारे इस पड़ोसी ग्रह में जीवन है अथवा कभी जीवन था।
- 21 सेंटीमीटर वेव बैंड के जरिए संचार की तकनीक में बहुत अधिक सुधार आने से अंतरतारकीय संचार संभव हो गया है। यह न्यूट्रल हाइड्रोजन की स्वाभाविक आवृत्ति है। यह हाइड्रोजन मंदाकिनी (गैलेक्सी) में सबसे अधिक मात्रा में उपलब्ध तत्व है। पृथ्वी के अलावा किसी अन्य ग्रह पर अगर जीवधारी होंगे तो पूरी संभावना है कि वे इससे सुपरिचित होंगे।
- अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ-साथ भविष्य में विभिन्न सितारों तक यानी अंतरतारकीय संचार के लिए अंतरिक्ष में एक विशाल एंटेना लगा पाना संभव हो सकेगा।

मैंने विज्ञान-कथा लेखकों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय अंतरिक्षयानों का उल्लेख नहीं किया। इसका कारण यह है कि मंदाकिनी में दूरियां इतनी अधिक हैं कि वर्तमान अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के आधार पर बने अंतरिक्षयानों का इस्तेमाल एकदम अव्यावहारिक होगा। इन अंतरिक्ष यानों की गति इतनी कम है कि हमारे अंतरिक्षयानों में बैठे कर निकटतम तारे प्रोक्सिमा सेंटोरी तक जाना, किसी चींटी की चेन्नई से दिल्ली तक की यात्रा से भी ज्यादा धीमा होगा।

विशेषज्ञ इस बात पर सहमत हैं कि पृथ्वी के अलावा अन्य ग्रहों की तलाश का सबसे बेहतर तरीका न्यूट्रल हाइड्रोजन जैसे तरंगदैर्घ्य (वेव लेंथ) के रेडियो संकेतों का इस्तेमाल है। इन तरंगों का क्षीणन कम होता है और ये उन जीवधारियों द्वारा पहचानी जा सकती हैं जो संभवतः विकास प्रक्रिया से गुजरे हों और वैज्ञानिक समझ रखते हों। हो सकता है कि वे ज्ञान-विज्ञान में हमसे बहुत आगे हों। हमारे वैज्ञानिकों के लिए यह बड़ी दिलचस्प बात होगी। शायद वे अपनी अब तक अनसुलझी अनेक गुत्थियां इन संपर्कों से सुलझा लें और गई गुना तेजी से प्रगति करना संभव हो जाए।

लेकिन, इस उत्साह के साथ धैर्य की भी जरूरत है। अगर हम सामान्य दूरी, अर्थात करीब दस प्रकाश वर्ष दूर स्थित किसी परलोकी प्राणी तक अपना कोई संदेश भेजें तो इसे वहां पहुंचने में दस साल लगेंगे और फिर उनका उत्तर मिलने में भी दस साल लगेंगे। इस तरह, संदेश पहुंचने और उत्तर मिलने में बीस साल लग जाएंगे। फिर भी ऐसे बड़े प्रयास का बड़ा महत्व होगा!

मुझे उम्मीद है कि शायद मैं आपको विनम्रतापूर्वक यह समझाने में सफल रहा हूं कि खगोलविज्ञान पढ़ना और समझना इतना दिलचस्प और लाभदायक क्यों है।

प्रो. जयंत विष्णु नार्लीकर सुप्रसिद्ध खगोल-भौतिकविद हैं और विज्ञान लोकप्रियकरण के लिए 'कलिंग पुरस्कार' से सम्मानित हो चुके हैं। वे अंतर-विश्वविद्यालय खगोलशास्त्र एवं खगोलभौतिकी केंद्र (आयुका) के पूर्व निदेशक भी हैं।

(अनुवाद : राजेन्द्र भट्ट)